॥ श्रीहरिः॥

306▲

धर्म क्या है? भगवान् क्या हैं?

जयदयाल गोयन्दका

गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR [SINCE 1923]

ॐ

ॐ श्रीपरमात्मने नमः

धर्म क्या है?

प्र०—कृपापूर्वक आप धर्मकी व्याख्या करें।

उ०—धर्मकी सच्ची व्याख्या कर सकें ऐसे पुरुष इस जमानेमें मिलने कठिन हैं।

प्र०—आप जैसा समझते हैं वैसा ही कहनेकी कृपा करें।

उ०—धर्मका विषय बड़ा गहन है, मुझको धर्मग्रन्थोंका बहुत कम ज्ञान है, वेदका तो मैंने प्रायः अध्ययन ही नहीं किया। मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, ऐसी अवस्थामें धर्मका तत्त्व कहना एक बालकपन-सा है। इसके अतिरिक्त मैं जितना कुछ जानता हूँ उतना भी कह नहीं सकता; क्योंकि जितना जानता हूँ उतना स्वयं कार्यमें परिणत नहीं कर सकता।

प्र०—खैर, यह बतलाइये कि आप किसको धर्म मानते हैं?

उ०—जो धारण करनेयोग्य है।

प्र०—धारण करनेयोग्य क्या है?

उ०—इस लोक और परलोकमें कल्याण करनेवाली महापुरुषोंद्वारा दी हुई शिक्षा।

प्र०—महापुरुष कौन हैं?

उ०—परमात्माके तत्त्वको यथार्थरूपसे जाननेवाले तत्त्ववेत्ता पुरुष।

प्र०—उनके लक्षण क्या हैं?

उ०—**अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।**
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १३-१४)

'जो सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित एवं स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित एवं अहंकारसे रहित सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है।'

'जो ध्यानयोगमें युक्त हुआ निरन्तर लाभ-हानिमें सन्तुष्ट है तथा मन और इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए मेरेमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मेरेमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मेरेको प्रिय है।'

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकांचनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

(गीता १४। २४-२५)

'जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित हुआ दुःख-सुखको समान समझनेवाला है तथा मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला और धैर्यवान् है तथा जो प्रिय और अप्रियको बराबर समझता है और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है।'

'जो मान और अपमानमें सम है एवं मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है, वह सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित हुआ पुरुष गुणातीत कहा जाता है।' ये महापुरुषोंके लक्षण हैं।

प्र०—इन लक्षणोंवाले कोई महापुरुष हिन्दूजातिमें आपकी जानकारीमें इस समय हैं?

उ०—अवश्य हैं, परन्तु मैं कह नहीं सकता।

प्र०—आप हिन्दू किसको समझते हैं?

उ०—जो अपनेको हिन्दू मानता हो, वही हिन्दू है।

प्र०—हिन्दू शब्दका क्या अभिप्राय है?

उ०—हिन्दुस्तान (आर्यावर्त)-में जन्म होना और किसी हिन्दुस्तानी आचार्यके चलाये हुए मतको मानना।

प्र०—सनातनी, आर्य, सिख, जैन, बौद्ध और ब्राह्म आदि भिन्न-भिन्न मतको माननेवाली तथा भारतकी जंगली जातियाँ क्या सभी हिन्दू हैं?

उ०—यदि वे अपनेको हिन्दू मानती हों तो अवश्य हिन्दू हैं।

प्र०—क्या सभी हिन्दुओंद्वारा चलाये हुए मत हिन्दू-धर्म माने जा सकते हैं?

उ०—अवश्य।

प्र०—आप इन सब मतोंमें सबसे प्रधान और श्रेयस्कर किस मतको मानते हैं?

उ०—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरभक्ति, ज्ञान, वैराग्य, मनका निग्रह, इन्द्रियदमन, तितिक्षा, श्रद्धा, क्षमा, वीरता, दया, तेज, सरलता, स्वार्थत्याग, अमानित्व, दम्भहीनता, अपैशुनता, निष्कपटता, विनय, धृति, सेवा, सत्संग, जप, ध्यान, निर्वैरता, निर्भयता, समता, निरहंकारता, मैत्री, दान, कर्तव्यपरायणता और शान्ति—इन चालीस गुणोंमेंसे जिस मतमें जितने अधिक गुण हों वही मत सबसे प्रधान और श्रेयस्कर माना जानेयोग्य है।

प्र०—इन चालीसोंकी संक्षेपमें व्याख्या कर दें तो बड़ी कृपा हो!

उ०—अच्छी बात है, सुनिये।

(१) **अहिंसा**—मन, वाणी और शरीरसे किसी प्रकार किसीको कष्ट न देना।

(२) **सत्य**—अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा जैसा निश्चय किया गया हो वैसा-का-वैसा ही प्रिय शब्दोंमें कहना।

(३) **अस्तेय**—किसी प्रकार भी चोरी न करना।

(४) **ब्रह्मचर्य**—आठ प्रकारके मैथुनोंका त्याग करना।

(५) **अपरिग्रह**— ममत्व-बुद्धिसे संग्रह न करना।

(६) **शौच**—बाहर और भीतरकी पवित्रता।

(७) **सन्तोष**—तृष्णाका सर्वथा अभाव।

(८) **तप**—स्वधर्म-पालनके लिये कष्टसहन।

(९) **स्वाध्याय**—पारमार्थिक ग्रन्थोंका अध्ययन और भगवान्के नाम तथा गुणोंका कीर्तन।

(१०) **ईश्वरभक्ति**—भगवान्में श्रद्धा और प्रेम होना।

(११) **ज्ञान**—सत् और असत् पदार्थका यथार्थ जानना।

(१२) **वैराग्य**—इस लोक और परलोकके समस्त पदार्थोंमें आसक्तिका अत्यन्त अभाव।

(१३) **मनका निग्रह**—मनका वशमें होना।

(१४) **इन्द्रियदमन**—समस्त इन्द्रियोंका वशमें होना।

(१५) **तितिक्षा**—शीत, उष्ण और सुख-दुःखादि द्वन्द्वोंमें सहनशीलता।

(१६) **श्रद्धा**—वेद, शास्त्र, महात्मा, गुरु और परमेश्वरके वचनोंमें प्रत्यक्षकी तरह विश्वास।

(१७) **क्षमा**—अपना अपराध करनेवालेको किसी प्रकार भी दण्ड देनेका भाव न रखना।

(१८) **वीरता**—कायरताका सर्वथा अभाव।

(१९) **दया**—किसी भी प्राणीको दुःखी देखकर हृदयका पिघल जाना।

(२०) **तेज**—श्रेष्ठ पुरुषोंकी वह शक्ति कि जिसके प्रभावसे विषयासक्त नीच प्रकृतिवाले मनुष्य भी प्रायः पापचरणसे हटकर श्रेष्ठ कर्मोंमें लग जाते हैं।

(२१) **सरलता**—शरीर और इन्द्रियोंसहित अन्तःकरणकी सरलता।

(२२) **स्वार्थत्याग**—किसी कार्यसे इस लोक या परलोकके किसी भी स्वार्थको न चाहना।

(२३) **अमानित्व**—सत्कार, मान और पूजादिका न चाहना।

(२४) **दम्भहीनता**—धर्मध्वजीपन अर्थात् ढोंगका न होना।

(२५) **अपैशुनता**—किसीकी भी निन्दा या चुगली न करना।

(२६) **निष्कपटता**—अपने स्वार्थ-साधनके लिये किसी बातका भी छिपाव न करना।

(२७) **विनय**—नम्रताका भाव।

(२८) **धृति**—भारी विपत्ति आनेपर भी चलायमान न होना।

(२९) **सेवा**—(सब भूतोंके हितमें रत रहना) समस्त जीवोंको यथायोग्य सुख पहुँचानेके लिये मन, वाणी, शरीरद्वारा निरन्तर निःस्वार्थ-भावसे अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा करना।

(३०) **सत्संग**—संत-महात्मा पुरुषोंका संग करना।

(३१) **जप**—अपने इष्टदेवके नाम या मन्त्रका जप करना।

(३२) **ध्यान**—अपने इष्टदेवका चिन्तन करना।

(३३) **निर्वैरता**—अपने साथ वैर रखनेवालोंमें भी द्वेषभाव न होना।

(३४) **निर्भयता**—भयका सर्वथा अभाव।

(३५) **समता**—मस्तक, पैर आदि अपने अंगोंकी तरह सबके साथ वर्णाश्रमके अनुसार यथायोग्य बर्तावमें भेद रखनेपर भी आत्मरूपसे सबको समभावसे देखना।

(३६) **निरहंकारता**—मन, बुद्धि, शरीरादिमें 'मैं'-पनका और उनसे होनेवाले कर्मोंमें कर्तापनका सर्वथा अभाव।

(३७) **मैत्री**—प्राणिमात्रके साथ प्रेमभाव।

(३८) **दान**—जिस देशमें, जिस कालमें, जिसको जिस वस्तुका अभाव हो उसको वह वस्तु प्रत्युपकार और फलकी इच्छा न रखकर हर्ष और सत्कारके साथ प्रदान करना।

(३९) **कर्तव्यपरायणता**—अपने कर्तव्यमें तत्पर रहना।

(४०) **शान्ति**—इच्छा और वासनाओंका

अत्यन्त अभाव होना और अन्तःकरणमें निरन्तर प्रसन्नताका रहना।

प्र०—आप वर्णाश्रम-धर्मको मानते हैं या नहीं?

उ०—मानता हूँ और उसका पालन करना अच्छा समझता हूँ।

प्र०—जो वर्णाश्रम-धर्मका पालन नहीं करते उनको क्या आप हिन्दू नहीं मानते?

उ०—जब वे अपनेको हिन्दू मानते हैं तब उन्हें हिन्दू न माननेका मेरा क्या अधिकार है? परन्तु वर्णाश्रम-धर्म न माननेवालोंकी शास्त्रोंमें निन्दा की गयी है। अतएव वर्णाश्रम-धर्मको अवश्य मानना चाहिये।

प्र०—आप वर्ण जन्मसे मानते हैं या कर्मसे?

उ०—जन्म और कर्म दोनोंसे।

प्र०—इन दोनोंमें आप प्रधान किसको मानते हैं?

उ०—अपने-अपने स्थानमें दोनों ही प्रधान हैं।

प्र०—वर्ण कितने हैं?

उ०—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—ये चार वर्ण हैं।

प्र०—ब्राह्मणके क्या कर्म हैं?

उ०—शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥

(गीता १८।४२)

'अन्तःकरणका निग्रह, इन्द्रियोंका दमन, बाहर-भीतरकी शुद्धि, धर्मके लिये कष्ट सहन करना और क्षमाभाव एवं मन, इन्द्रियाँ और शरीरकी सरलता, आस्तिकबुद्धि, शास्त्रविषयक ज्ञान और परमात्मतत्त्वका अनुभव भी ये ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म हैं यानी धर्म हैं।'

इनके अतिरिक्त यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना, विद्या पढ़ना, विद्या पढ़ाना—ये कर्तव्यकर्म हैं। इनमें यज्ञ करना, दान देना और विद्या पढ़ना—ये तीन तो सामान्य धर्म हैं और यज्ञ कराना, दान लेना और विद्या पढ़ाना—ये जीविकाके विशेष धर्म हैं।

प्र०—ब्राह्मणकी जीविकाके सर्वोत्तम धर्म क्या हैं?

उ०—किसानके अनाज घर ले जानेके बाद खेतमें और अनाजके क्रय-विक्रयके स्थानमें जमीनपर बिखरे हुए दानोंको बटोरकर उनसे शरीर-निर्वाह करना सर्वोत्तम है। इसीको ऋत और सत् कहा है। परन्तु यह प्रणाली नष्ट हो जानेके कारण इस जमानेमें इस प्रकार निर्वाह होना असम्भव-सा है। अतएव साधारण जीविकाके अनुसार ही निर्वाह करना चाहिये।

प्र०—साधारण जीविकामें कौन उत्तम है?

उ०—बिना याचना किये जो अपने-आपसे प्राप्त होता है वह पदार्थ सबसे उत्तम है, उसीको अमृत कहते हैं। नियत वेतनपर विद्या पढ़ाना और माँगकर दक्षिणा या दान लेना निन्द्य है। इनमें भी माँगकर दान लेनेको तो विषके सदृश कहा है।

प्र०—इस वृत्तिसे निर्वाह न हो तो ब्राह्मणको क्या करना चाहिये?

उ०—क्षत्रियकी वृत्तिसे निर्वाह करे, उससे भी काम न चले तो वैश्य-वृत्तिसे जीविका चलावे।

परन्तु दास-वृत्तिका अवलम्बन आपत्तिकालमें भी न करे।

प्र०—क्षत्रियके क्या कर्म हैं?

उ०—शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥

(गीता १८। ४३)

'शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्धमें न भागनेका स्वभाव एवं दान और स्वामीभाव—ये सब क्षत्रियके स्वाभाविक कर्म हैं।'

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः॥

(मनुस्मृति १।८९)

'प्रजाकी रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना और विषयोंमें न लगना संक्षेपसे ये क्षत्रियके कर्म हैं।' इन्हींमेंसे प्रजाका पालन करना, सैनिक बनना, न्याय करना, कर लेना और शस्त्रोंद्वारा दूसरोंकी रक्षा करना इत्यादि जीविकाके कर्म हैं। दान देना, यज्ञ करना और विद्या पढ़ना—ये सामान्य धर्म हैं।

प्र०—इन कर्मोंसे क्षत्रियकी जीविका न चले तो उसे क्या करना चाहिये?

उ०—वैश्य-वृत्तिसे निर्वाह करे, उससे भी न चले तो शूद्र-वृत्तिसे काम चलावे।

प्र०—वैश्यके क्या कर्म हैं?

उ०—**पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।**
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥

(मनुस्मृति १। ९०)

'पशुओंकी रक्षा, दान देना, यज्ञ करना, पढ़ना, व्यापार, ब्याज और खेती—ये वैश्यके कर्म हैं।'

पशुपालन, कृषि तथा सत् और पवित्र व्यापार—ये स्वाभाविक और जीविकाके भी कर्म हैं। ब्याज भी जीविकाका है परन्तु केवल ब्याज उपजाना निन्द्य है। यज्ञ, दान और अध्ययन सामान्य धर्म हैं।

प्र०—सत् और पवित्र व्यापार किसे कहते हैं, बताइये?

उ०—दूसरेके हकपर नीयत न रखते हुए झूठ-

कपटको छोड़कर न्यायपूर्वक पवित्र वस्तुओंका क्रय-विक्रय करना सत् और पवित्र व्यापार है*।

प्र०—इनसे जीविका न चले तो वैश्यको क्या करना चाहिये?

उ०—शूद्रवृत्तिसे काम चलावे परन्तु अपवित्र वस्तुओंका और सट्टेका व्यापार कभी न करना चाहिये।

प्र०—कृपाकर अपवित्र वस्तुओंकी व्याख्या कीजिये।

उ०—मद्य, मांस, हड्डी, चमड़ा, सींग, लाह, चपड़ा, नील इत्यादि शास्त्रवर्जित घृणित पदार्थ अपवित्र हैं।

---

* वस्तुओंके खरीदने और बेचनेमें तौल-नाप और गिनती आदिसे कम देना अथवा अधिक लेना एवं वस्तुको बदलकर या एक वस्तुमें दूसरी (खराब) वस्तु मिलाकर दे देना अथवा (अच्छी) ले लेना तथा नफा, आढ़त और दलाली ठहराकर उससे अधिक दाम लेना या कम देना तथा झूठ, कपट, चोरी और जबरदस्ती अथवा अन्य किसी प्रकारसे दूसरेके हकको ग्रहण कर लेना इत्यादि दोषोंसे रहित जो सत्यतापूर्वक पवित्र वस्तुओंका व्यापार है उसका नाम सत्य व्यवहार है।

प्र०—शूद्रके क्या कर्म हैं?

उ०—सेवा और कारीगरीके काम ही इनके स्वाभाविक और आजीविकाके कर्म हैं।

प्र०—तो फिर जिन अपवित्र और घृणित पदार्थोंका व्यापार वैश्योंको नहीं करना चाहिये; उनके व्यापार करनेके अधिकारी कौन लोग हैं?

उ०—मोची, चमार, चाण्डाल और मेहतर आदि पतित शूद्रोंको, जिन्हें अछूत माना जाता है, उपर्युक्त वस्तुओंके संग्रह करनेका तथा उन्हें कार्योपयोगी बनाकर जनसमुदायकी सेवामें न्यायपूर्वक उचित मूल्यपर वितरण करनेका अधिकार है। परंतु यदि वे इस कार्यको स्वधर्म मानकर धर्मपालनके लिये करना चाहें तो इस बातका विशेषरूपसे ध्यान रखें कि प्राणियोंके शरीरसे निकलनेवाले मांस, हड्डी और चमड़ा आदि पदार्थ अपनी स्वाभाविक मृत्युसे मरे हुए प्राणियोंके ही शरीरके हों। उक्त पदार्थोंके लिये किसी भी प्राणीकी हिंसा कदापि न की जाय। साथ ही उन्हें इस बातका भी खयाल रखना चाहिये कि

वे वस्तुएँ यथावश्यक व्यक्तिके काममें लगें तथा कहीं भी सत्यता और न्यायका त्याग न हो। सद्व्यापारके लिये जो-जो बातें टिप्पणीमें लिखी गयी हैं, उनमेंसे पवित्रताके सिवा और सभी बातें उपर्युक्त वस्तुओंके व्यापारमें भी रहनी चाहिये।

प्र०—सट्टेका व्यापार किसको समझना चाहिये?

उ०—वर्षा, भूकम्प या अन्य किसी प्रकारकी दैवी घटनाके भविष्य-परिणामको निमित्त बनाकर जो होड़ लगायी जाती है (हार-जीतकी कल्पना की जाती है।) वह तो प्रत्यक्ष ही जुआ है। इसके सिवा जो माल वास्तवमें न तो डिलीवर लिया जाता है और न दिया ही जाता है, समयपर भाव करके केवल घाटे-नफेका भुगतान होता है, किसीको उसके खरीदने-बेचनेमें रुपया नहीं लगाना पड़ता; ऐसा व्यापार सट्टा कहलाता है। इसी प्रकार जिसके पास जिस वस्तुको उत्पन्न करनेका न तो साधन है और न किसी उत्पन्न करनेवाले कारखाने या खानसे ही वह वस्तु उसकी खरीदी हुई है, ऐसा

व्यापारी यदि साहस करके उस वस्तुको माथे धरकर बेचता है, तो उसकी वह खरीद-बिक्री भी सट्टा ही है। इसी तरह किसी वस्तुके समयपर निश्चित होनेवाले भावोंके सम्बन्धमें मंदी-तेजीकी शर्तपर होड़ लगाना भी जुआ है, इसको भी सट्टा ही समझना चाहिये। हाँ, जो वस्तु किसी ऐसे कारखाने या किसानसे खरीदी जाती है, जिसके पास वह वस्तु किसी निश्चित समयपर तैयार या उत्पन्न होनेवाली रहती है तथा खरीदनेवालेको भी वह वस्तु अपने किसी कार्य या व्यापारके लिये उस समय आवश्यक होती है तो उसका खरीदना अनुचित नहीं है, वैसी वस्तुके लिये यदि समयपर निश्चित मूल्य देकर उसे ठीक डिलीवर देनेके उद्देश्यसे ही खरीदा जाय तो वह आमदनी या सौदा सट्टेके अन्तर्गत नहीं, वह एक प्रकारका व्यापार ही है।

भगवान् क्या हैं?

भगवान् क्या हैं? इस सम्बन्धमें मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह मेरे अपने निश्चयकी बात है, हो सकता है कि मेरा निश्चय ठीक न हो। मैं यह नहीं कहता कि दूसरोंका निश्चय ठीक नहीं है। परंतु मुझे अपने निश्चयमें कोई संदेह नहीं, मैं इस विषयमें संशयात्मा नहीं हूँ, तथापि दूसरोंके निश्चयको गलत बतानेका मुझे कोई अधिकार नहीं है।

भगवान् क्या हैं? इन शब्दोंका वास्तविक उत्तर तो यही है कि इस बातको भगवान् ही जानते हैं। इसके सिवा भगवान्के विषयमें उन्हें तत्त्वसे जाननेवाला ज्ञानी पुरुष उनके तटस्थ अर्थात् नजदीकका कुछ भाव बतला सकता है। वास्तवमें तो भगवान्के स्वरूपको भगवान् ही जानते हैं, तत्त्वज्ञ लोग संकेतके रूपमें भगवान्के स्वरूपका कुछ वर्णन कर सकते हैं। परंतु जो कुछ जानने और वर्णन करनेमें आता है, वास्तवमें भगवान्

उससे और भी विलक्षण हैं। वेद, शास्त्र और मुनि-महात्मा परमात्माके सम्बन्धमें सदासे कहते ही आ रहे हैं, किंतु उनका वह कहना आजतक पूरा नहीं हुआ। अबतकके उनके सब वचनोंको मिलाकर या अलग-अलग कर कोई परमात्माके वास्तविक स्वरूपका वर्णन करना चाहे तो उसके द्वारा भी पूरा वर्णन नहीं हो सकता; अधूरा ही रह जाता है। इस विवेचनमें यह तो निश्चय हो गया कि भगवान् हैं अवश्य, उनके होनेमें रत्तीभर भी शंका नहीं है, यह दृढ़ निश्चय है। अतएव जो आदमी भगवान्‌को अपने मनसे जैसा समझकर साधन कर रहे हैं, उसमें परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं; परंतु सुधार कर लेना चाहिये। वास्तवमें साधन करनेवालोंमें कोई भी भूलमें नहीं हैं या एक तरहसे सभी भूलमें हैं। जो परमात्माके लिये साधन करता है, वह उसीके मार्गपर चलता है, इसलिये कोई भूलमें नहीं हैं और भूलमें इसलिये हैं कि जिस किसी एक वस्तुको साध्य

या ध्येय मानकर वे उसकी प्राप्तिका साधन करते हैं, उनके उस साध्य या ध्येयसे वास्तविक परमात्माका स्वरूप अत्यन्त ही विलक्षण है। जो जानने, मानने और साधन करनेमें आता है, वह तो ध्येय परमात्माको बतलानेवाला सांकेतिक लक्ष्य है। इसलिये जहाँतक उस ध्येयकी प्राप्ति नहीं होती, वहाँतक सभी भूलमें हैं, ऐसा कहा गया है। परंतु इससे यह नहीं मानना चाहिये कि पहले भूलको ठीक करके फिर साधन करेंगे। ठीक तो कोई कर ही नहीं सकता, यथार्थ प्राप्तिके बाद आप ही ठीक हो जाता है, इससे पहले जो होता है सो अनुमान होता है और उस अनुमानसे जो कुछ किया जाता है वही उसकी प्राप्तिका ठीक उपाय है। जैसे एक आदमी द्वितीयाके चन्द्रमाको देख चुका है, वह दूसरे न देखनेवालोंको इशारेसे बतलाता है कि तू मेरी नजरसे देख उस वृक्षसे चार अंगुल ऊँचा चन्द्रमा है। इस कथनसे उसका लक्ष्य वृक्षकी ओरसे होकर चन्द्रमातक चला

जाता है और वह चन्द्रमाको देख लेता है। वास्तवमें न तो वह उसकी आँखमें घुसकर ही देखता है और न चन्द्रमा उस वृक्षसे चार अंगुल ऊँचा ही है और न चन्द्रमण्डल जितना छोटा वह देखता है उतना छोटा ही है। परंतु लक्ष्य बँध जानेसे वह उसे देख लेता है। कोई-कोई द्वितीयाके चन्द्रमाका लक्ष्य करानेके लिये सरपतसे बतलाते हैं, कोई इससे भी अधिक लक्ष्य करानेके लिये चूनेसे लकीर खींचकर या चित्र बनाकर उसे दिखाते हैं, परंतु वास्तवमें चन्द्रमाके वास्तविक स्वरूपसे इनकी कुछ भी समता नहीं है। न तो इनमें चन्द्रमाका प्रकाश ही है, न ये उतने बड़े ही हैं और न इनमें चन्द्रमाके अन्य गुण ही हैं। इसी प्रकार लक्ष्यके द्वारा देखनेपर भगवान् देखे या जाने जा सकते हैं। वास्तवमें लक्ष्य और उनके असली स्वरूपमें वैसा ही अन्तर है कि जैसा चन्द्रमा और उसके लक्ष्यमें। चन्द्रमाका स्वरूप तो शायद कोई योगी बता भी सकता है, परंतु

भगवान्का स्वरूप कोई भी बता नहीं सकता, क्योंकि यह वाणीका विषय नहीं है। वह तो जब प्राप्त होगा तभी मालूम होगा। जिसको प्राप्त होगा वह भी उसे समझा नहीं सकेगा। यह तो असली स्वरूपकी बात हुई। अब यह बतलाना है कि साधकके लिये यह ध्येय या लक्ष्य किस प्रकारका होना चाहिये और वह किस प्रकार समझा जा सकता है। इस विषयमें महात्माओंसे सुनकर और शास्त्रोंको सुन और देखकर मेरे अनुभवमें जो बातें निश्चयात्मकरूपसे जँची हैं, वही बतलायी जाती हैं। किसीकी इच्छा हो तो वह उन्हें काममें ला सकता है।

परमात्माके असली स्वरूपका ध्यान तो वास्तवमें बन नहीं सकता। जबतक नेत्रोंसे, मनसे और बुद्धिसे परमात्माके स्वरूपका अनुभव न हो जाय, तबतक जो ध्यान किया जाता है, वह अनुमानसे ही होता है। महात्माओंके द्वारा सुनकर, शास्त्रोंमें पढ़कर, चित्रादि देखकर साधन करनेसे साधकको परमात्माके

दर्शन हो सकते हैं। पहले यह बात कही जा चुकी है कि जो परमात्माका जिस प्रकार ध्यान कर रहे हैं, वे वैसा ही करते रहें, परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं। कुछ सुधारकी आवश्यकता अवश्य है?

ध्यान कैसे करना चाहिये?

कुछ लोग निराकार शुद्ध ब्रह्मका ध्यान करते हैं, कुछ साकार दो भुजावाले और कुछ चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं। वास्तवमें भगवान् विष्णु, राम और कृष्ण जैसे एक हैं, वैसे ही देवी, शिव, गणेश और सूर्य भी उनसे कोई भिन्न नहीं। ऐसा अनुमान होता है कि लोगोंकी भिन्न-भिन्न धारणाके अनुसार एक ही परमात्माका निरूपण करनेके लिये श्रीवेदव्यासजीने अठारह पुराणोंकी रचना की है; जिस देवके नामसे जो पुराण बना, उसमें उसीको सर्वोपरि, सृष्टिकर्ता, सर्वगुण-सम्पन्न ईश्वर बतलाया गया। वास्तवमें नाम-रूपके भेदसे सबमें उस एक ही परमात्माकी बात कही गयी है। नाम-रूपकी भावना साधक अपनी इच्छाके अनुसार

कर सकते हैं, यदि कोई एक स्तम्भको ही परमात्मा मानकर उसका ध्यान करे तो वह भी परमात्माका ही ध्यान होता है, अवश्य ही लक्ष्यमें ईश्वरका पूर्ण भाव होना चाहिये।

साकार और निराकारके ध्यानमें साकारकी अपेक्षा निराकारका ध्यान कुछ कठिन है, फल दोनोंका एक ही है, केवल साधनमें भेद है। अतएव अपनी-अपनी प्रीतिके अनुसार साधक निराकार या साकारका ध्यान कर सकते हैं।

निराकारके उपासक साकारके भावको साथमें न रखकर केवल निराकारका ही ध्यान करें, तो भी कोई आपत्ति नहीं, परंतु साकारका तत्त्व समझकर परमात्माको सर्वदेशी, विश्वरूप मानते हुए निराकारका ध्यान करें, तो फल शीघ्र होता है। साकारका तत्त्व न समझनेसे कुछ विलम्बसे सफलता होती है।

साकारके उपासकको निराकार, व्यापक ब्रह्मका तत्त्व जाननेकी आवश्यकता है, इसीसे वह सुगमतापूर्वक शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है। भगवान्ने

गीतामें प्रभाव समझाकर ध्यान करनेकी ही बड़ाई की है।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(१२। २)

'हे अर्जुन! मेरेमें मनको एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन, ध्यानमें लगे हुए* जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त हुए मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मेरेको योगियोंमें भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूँ।'

वास्तवमें निराकारके प्रभावको जानकर जो साकारका ध्यान किया जाता है, वही भगवान्‌की शीघ्र प्राप्तिके लिये उत्तम और सुलभ साधन है। परंतु परमात्माका असली स्वरूप इन दोनोंसे ही

---

* अर्थात् गीता अध्याय ११। ५५ में बताये हुए प्रकारसे निरन्तर मेरेमें लगे हुए।

विलक्षण है, जिसका ध्यान नहीं किया जा सकता। निराकारके ध्यान करनेकी कई युक्तियाँ हैं। जिसको जो सुगम मालूम हो, वह उसीका अभ्यास करे। सबका फल एक ही है। कुछ युक्तियाँ यहाँपर बतलायी जाती हैं।

साधकको श्रीगीताके अध्याय ६। ११ से १३ के अनुसार, एकान्त स्थानमें स्वस्तिक या सिद्धासनसे बैठकर नेत्रोंकी दृष्टिको नासिकाके अग्रभागपर रखकर या आँखें बंदकर (अपने इच्छानुसार) नियमपूर्वक प्रतिदिन कम-से-कम तीन घंटेका समय ध्यानके अभ्यासमें बिताना चाहिये। तीन घंटे कोई न कर सके तो दो करे, दो नहीं तो एक घंटा अवश्य ध्यान करना चाहिये। शुरू-शुरूमें मन न लगे तो पंद्रह-बीस मिनटसे आरम्भकर धीरे-धीरे ध्यानका समय बढ़ाता रहे। बहुत शीघ्र प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले साधकोंके लिये तीन घंटेका अभ्यास आवश्यक है। ध्यानमें नाम-जपसे बड़ी सहायता मिलती है। ईश्वरके सभी नाम समान हैं, परंतु

निराकारकी उपासनामें ॐकार प्रधान है। योगदर्शनमें भी महर्षि पतंजलिने कहा है—

तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्।

(१। २७-२८)

'उसका वाचक प्रणव (ॐ) है, उस प्रणवका जप करना और उसके अर्थ (परमात्मा)-का ध्यान करना चाहिये।'

इन सूत्रोंका मूल आधार—'**ईश्वरप्रणिधानाद्वा।**' (योग० १। २३) है। इसमें भगवान्‌की शरण होनेको और उन दोनोंमेंसे पहलेमें भगवान्‌का नाम बतलाकर दूसरेमें नाम-जप और स्वरूपका ध्यान करनेकी बात कही गयी है।

महर्षि पतंजलिके परमेश्वरके स्वरूपसम्बन्धी अन्य विचारोंके सम्बन्धमें मुझे यहाँपर कुछ नहीं कहना है। यहाँपर मेरा अभिप्राय केवल यही है कि ध्यानका लक्ष्य ठीक करनेके लिये पतंजलिजीके कथनानुसार स्वरूपका ध्यान करते हुए नामका जप करना चाहिये। ॐ की जगह कोई 'आनन्दमय' या

'विज्ञानानन्दघन' ब्रह्मका जप करे, तो भी कोई आपत्ति नहीं है। भेद नामोंमें है, फलमें कोई फर्क नहीं है।

जप सबसे उत्तम वह होता है, जो मनसे होता है, जिसमें जीभ हिलाने और ओष्ठसे उच्चारण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। ऐसे जपमें ध्यान और जप दोनों साथ ही हो सकते हैं। अन्तःकरणके चार पदार्थोंमेंसे मन और बुद्धि दो प्रधान हैं, बुद्धिसे पहले परमात्माका स्वरूप निश्चय करके उसमें बुद्धि स्थिर कर ले, फिर मनसे उसी सर्वत्र परिपूर्ण आनन्दमयकी पुनः-पुनः आवृत्ति करता रहे। यह जप भी है और ध्यान भी। वास्तवमें आनन्दमयके जप और ध्यानमें कोई खास अन्तर नहीं। दोनों काम एक साथ किये जा सकते हैं। दूसरी युक्ति श्वासके द्वारा जप करनेकी है। श्वासोंके आते और जाते समय कण्ठसे नामका जप करे, जीभ और ओष्ठको बंदकर श्वासके साथ नामकी आवृत्ति करता रहे, यही प्राणजप है, इसको

प्राणद्वारा उपासना कहते हैं। यह जप भी उच्च श्रेणीका है। यह न हो सके तो मनमें ध्यान करे और जीभसे उच्चारण करे, परंतु मेरी समझसे इनमें साधकके लिये अधिक सुगम और लाभप्रद श्वासके द्वारा किया जानेवाला जप है। यह तो जपकी बात हुई, असलमें जप तो निराकार और साकार दोनों प्रकारके ध्यानमें ही होना चाहिये। अब निराकारके ध्यानके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है।

एकान्त स्थानमें स्थिर आसनसे बैठकर एकाग्रचित्तसे इस प्रकार अभ्यास करे। जो कोई भी वस्तु इन्द्रिय और मनसे प्रतीत हो, उसीको कल्पित समझकर उसका त्याग करता रहे। जो कुछ प्रतीत होता है, सो है नहीं। स्थूल शरीर, ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि कुछ भी नहीं हैं, इस प्रकार सबका अभाव करते-करते अभाव करनेवाले पुरुषकी वह वृत्ति (जिसे ज्ञान, विवेक और प्रत्यय भी कहते हैं, यह सब शुद्ध बुद्धिके कार्य हैं; यहाँपर बुद्धि ही इनका अधिकरण है, जिसके द्वारा परमात्माके स्वरूपका

मनन होता है और प्रतीत होनेवाली प्रत्येक वस्तुमें 'यह नहीं है, यह नहीं है' ऐसा अभाव हो जाता है, इसीको वेदोंमें '**नेति-नेति**' ऐसा भी नहीं, ऐसा भी नहीं—कहा है।) अर्थात् दृश्यका अभाव करनेवाली वृत्ति भी शान्त हो जाती है। उस वृत्तिका त्याग करना नहीं पड़ता, स्वयमेव हो जाता है। त्याग करनेमें तो त्याग करनेवाला, त्याज्य वस्तु और त्याग यह त्रिपुटी आ जाती है। इसलिये त्याग करना नहीं बनता, त्याग हो जाता है, जैसे इन्धनके अभावमें अग्नि स्वयमेव शान्त हो जाती है, इसी प्रकार विषयोंके सर्वथा अभावसे वृत्तियाँ भी सर्वथा शान्त हो जाती हैं। शेषमें जो बच रहता है, वही परमात्माका स्वरूप है। इसीको निर्बीज समाधि भी कहते हैं।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः।

(योग० १। ५१)

यहाँपर यह शंका होती है कि त्यागके बाद त्यागी बचता है, वह अल्प है, परमात्मा महान् है,

इसलिये बच रहनेवालेको ही परमात्माका स्वरूप कैसे कहा जाता है? बात ठीक है। परंतु वह अल्प वहींतक है, जबतक वह एक सीमाबद्ध स्थानमें अपनेको मानकर बाकीकी सब जगह दूसरोंसे भरी हुई समझता है। दूसरी सब वस्तुओंका अभाव हो जानेपर, शेषमें बचा हुआ केवल एक तत्त्व ही परमात्मतत्त्व है। संसारको जड़से उखाड़कर फेंक देनेपर परमात्मा आप ही रह जाते हैं। उपाधियोंका नाश होते ही सारा भेद मिटकर अपार एकरूप परमात्माका स्वरूप रह जाता है, वही सब जगह परिपूर्ण और सभी देशकालमें व्याप्त है। वास्तवमें देशकाल भी उसमें कल्पित ही हैं। वह तो एक ही पदार्थ है, जो अपने-ही-आपमें स्थित है, जो अनिर्वचनीय है और अचिन्त्य है। जब चिन्तनका सर्वथा त्याग हो जाता है, तभी उस अचिन्त्य ब्रह्मका खजाना निकल पड़ता है, साधक उसमें जाकर मिल जाता है। जबतक अज्ञानकी आड़से दूसरे पदार्थ भरे हुए थे, तबतक वह खजाना अदृश्य था, अज्ञान

मिटनेपर एक ही वस्तु रह जाती है, तब उसमें मिल जाना यानी सम्पूर्ण वृत्तियोंका शान्त होकर एक ही वस्तुका रह जाना निश्चित है।

महाकाशसे घटाकाश तभीतक अलग है, जब-तक घड़ा फूट नहीं जाता। घड़ेका फूटना ही अज्ञानका नाश होना है, परंतु यह दृष्टान्त भी पूरा नहीं घटता। कारण घड़ा फूटनेपर तो उसके टूटे हुए टुकड़े आकाशका कुछ अंश रोक भी लेते हैं, परंतु यहाँ अज्ञानरूपी घड़ेके नाश हो जानेपर, ज्ञानका जरा-सा अंश रोकनेके लिये भी कोई पदार्थ नहीं बच रहता। भूल मिटते ही जगत्‌का सर्वथा अभाव हो जाता है। फिर जो बच रहता है, वही ब्रह्म है। उदाहरणार्थ जैसे घटाकाश जीव है, महाकाश परमात्मा है। उपाधिरूपी घट नष्ट हो जानेपर दोनों एकरूप हो जाते हैं। एकरूप तो पहले भी थे, परंतु उपाधिभेदसे भेद प्रतीत होता था।

वास्तवमें आकाशका दृष्टान्त परमात्माके लिये सर्वदेशी नहीं है। आकाश जड है, परमात्मा जड

नहीं। आकाश दृश्य है, परमात्मा दृश्य नहीं। आकाश विकारी है, परमात्मा विकारशून्य है। आकाश अनित्य है, महाप्रलयमें इसका नाश होता है, परमात्मा नित्य है। आकाश शून्य है, उसमें सब कुछ समाता है। परमात्मा घन है, उसमें दूसरेका समाना सम्भव नहीं। आकाशसे परमात्मा अत्यन्त विलक्षण है। ब्रह्मके एक अंशमें माया है, जिसे अव्याकृत प्रकृति कहते हैं, उसके एक अंशमें महत्तत्त्व (समष्टि बुद्धि) है, जिस बुद्धिसे सबकी बुद्धि होती है, उस बुद्धिके एक अंशमें अहंकार है, उस अहंकारके एक अंशमें आकाश, आकाशमें वायु, वायुमें अग्नि, अग्निमें जल और जलमें पृथ्वी। इस प्रकार प्रक्रियासे यह सिद्ध होता है कि समस्त ब्रह्माण्ड मायाके एक अंशमें है और वह माया परमात्माके एक अंशमें है, इस न्यायसे आकाश तो परमात्माकी तुलनामें अत्यन्त ही अल्प है, परंतु इस अल्पताका पता तो परमात्माके जाननेपर ही लगता है, जैसे एक आदमी स्वप्न

देखता है। स्वप्नमें उसे दिशा, काल, आकाश, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात आदि समस्त पदार्थ भासते हैं, बड़ा विस्तार दीख पड़ता है, परंतु आँख खुलते ही उस सारी सृष्टिका अत्यन्त अभाव हो जाता है, फिर पता लगता है कि वह सृष्टि तो अपने ही संकल्पसे अपने ही अन्तर्गत थी, जो मेरे अंदर थी, वह अवश्य ही मुझसे छोटी वस्तु थी, मैं तो उससे बड़ा हूँ। वास्तवमें तो थी ही नहीं, केवल कल्पना ही थी, परंतु यदि थी भी तो अत्यन्त अल्प थी, मेरे एक अंशमें थी, मेरा ही संकल्प था; अतएव मुझसे कोई भिन्न वस्तु नहीं थी। यह ज्ञान आँख खुलनेपर—जागनेपर होता है। इसी प्रकार परमात्माके सच्चे स्वरूपमें जागनेपर यह सृष्टि भी नहीं रहती। यदि कहीं रहती है ऐसा माने, तो वह महापुरुषोंके कथनानुसार परमात्माके एक जरा-से अंशमें और उसीके संकल्पमात्रमें रहती है।

इसलिये आकाशका दृष्टान्त परमात्मामें पूर्णरूपसे नहीं घटता। इतने ही अंशमें घटता है कि मनुष्यकी

दृष्टिमें जैसे आकाश निराकार है, ब्रह्म वास्तवमें वैसे ही निराकार है। मनुष्यकी दृष्टिमें जैसे आकाशकी अनन्तता भासती है, वैसे ही ब्रह्म सत्य अनन्त है। मनुष्यकी दृष्टिसे समझानेके लिये आकाशका उदाहरण है। इन सब वस्तुओंका अभाव होनेपर प्राप्त होनेवाली चीज कैसी है, उसका स्वरूप कोई नहीं कह सकता, वह तो अत्यन्त विलक्षण है। सूक्ष्मभावके तत्त्वज्ञ सूक्ष्मदर्शी महात्मागण उसे '**सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**' कहते हैं। वह अपार है, असीम है, चेतन है, ज्ञाता है, घन है, आनन्दमय है, सुखरूप है, सत् है, नित्य है। इस प्रकारके विशेषणोंसे वे विलक्षण वस्तुका निर्देश करते हैं। उसकी प्राप्ति हो जानेपर फिर कभी पतन नहीं होता। दुःख, क्लेश, दुर्गुण, शोक, अल्पता, विक्षेप, अज्ञान और पाप आदि सब विकारोंकी सदाके लिये आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। एक सत्य, ज्ञान, बोध, आनन्दरूप ब्रह्मके बाहुल्यकी जागृति रहती है। यह जागृति भी केवल समझानेके लिये ही है। वास्तवमें तो कुछ कहा नहीं जा सकता।

अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते।

(गीता १३। १२)

'वह आदिरहित परब्रह्म अकथनीय होनेसे न सत् कहा जाता है और न असत् ही कहा जाता है।'

यदि ज्ञानका भोक्ता कहें तो भोग कोई नहीं है। यदि ज्ञानरूप या सुखरूप कहें तो कोई भोक्ता नहीं है। भोक्ता, भोग, भोग्य—सब कुछ एक ही रह जाता है। वह एक ऐसी चीज है, जिसमें त्रिपुटी रहती ही नहीं। एक तो यह निराकारके ध्यानकी विधि है।

ध्यानकी दूसरी विधि

एकान्तस्थानमें बैठकर, आँखे मूँदकर ऐसी भावना करे कि मानो, सत्, चित्, आनन्दघनरूपी समुद्रकी अत्यन्त बाढ़ आ गयी है और मैं उसमें गहरा डूबा हुआ हूँ। अनन्त विज्ञानानन्दघन समुद्रमें निमग्न हूँ। समस्त संसार परमात्माके संकल्पमें था, उसने संकल्प त्याग दिया, इससे मेरे सिवा सारे संसारका अभाव होकर, सर्वत्र एक सच्चिदानन्दघन

परमात्मा ही रह गये। मैं परमात्माका ध्यान करता हूँ तो परमात्माके संकल्पमें मैं हूँ, मेरे सिवा और सबका अभाव हो गया। जब परमात्मा मेरा संकल्प छोड़ देंगे, तब मैं भी नहीं रहूँगा, केवल परमात्मा ही रह जायँगे। यदि परमात्मा मेरा संकल्प न त्यागकर मुझे स्मरण रखें तो भी बड़े आनन्दकी बात है। इसी प्रकार भेदसहित निराकारकी उपासना करे।

इसमें साधनकालमें भेद है और सिद्ध-कालमें अभेद है; परमात्माने संकल्प छोड़ दिया; बस, एक परमात्मा ही रह गये। एक युक्ति यह है। इसके अतिरिक्त निराकारके ध्यानकी और भी कई युक्तियाँ हैं। उनमेंसे दो युक्तियाँ गीताप्रेससे प्रकाशित 'सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय' नामक पुस्तकमें बतलायी गयी हैं, वहाँ देखनी चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह है कि निराकारका ध्यान दो प्रकारसे होता है—भेदसे और अभेदसे। दोनोंका फल एक अभेद परमात्माकी प्राप्ति ही है। जो लोग जीवको सदा अल्प मानकर परमात्मासे कभी उसका अभेद

नहीं मानते, उनकी मुक्ति भी अल्प होती है, सदाके लिये वे मुक्त नहीं होते। उन्हें प्रलयकालके बाद वापस लौटना ही पड़ता है। इस मुक्तिवादसे वे ब्रह्मको प्राप्त हो करके भी अलग रह जाते हैं।

अब साकारके ध्यानके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है। साकारकी उपासनाके फल दोनों प्रकारके होते हैं। साधक यदि सद्योमुक्ति चाहता है, शुद्ध ब्रह्ममें एकरूपसे मिलना चाहता है तो उसमें मिल जाता है, उसकी सद्योमुक्ति हो जाती है। परंतु यदि वह ऐसी इच्छा करता है कि मैं दास, सेवक या सखा बनकर भगवान्‌के समीप निवास कर प्रेमानन्दका भोग करूँ या अलग रहकर संसारमें भगवत्प्रेम-प्रचाररूप परम सेवा करूँ तो उसको सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य आदि मुक्तियोंमेंसे यथा-रुचि कोई-सी मुक्ति मिल जाती है और वह मृत्युके बाद भगवान्‌के परम नित्यधाममें चला जाता है। महाप्रलयतक नित्यधाममें रहकर अन्तमें परमात्मामें मिल जाता है या संसारका उद्धार करनेके लिये

कारक पुरुष बनकर जन्म भी ले सकता है; परंतु जन्म लेनेपर भी वह किसी फँसावटमें नहीं फँसता? माया उसे किंचित् भी दुःख-कष्ट नहीं पहुँचा सकती, वह नित्य मुक्त ही रहता है। जिस नित्यधाममें ऐसा साधक जाता है, वह परमधाम सर्वोपरि है, सबसे श्रेष्ठ है। उससे परे एक सच्चिदानन्दघन निराकार शुद्ध ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह सदासे है, सब लोक नाश होनेपर भी वह बना रहता है। उसका स्वरूप कैसा है? इस बातको वही जानता है जो वहाँ पहुँच जाता है। वहाँ जानेपर सारी भूलें मिट जाती हैं। उसके सम्बन्धकी सम्पूर्ण भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ वहाँ पहुँचनेपर एक यथार्थ सत्यस्वरूपमें परिणत हो जाती है। महात्मागण कहते हैं कि वहाँ पहुँचे हुए भक्तोंको प्रायः वह सब शक्तियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं जो भगवान्में हैं, परंतु वे भक्त भगवान्के सृष्टिकार्यके विरुद्ध उनका उपयोग कभी नहीं करते। उस महामहिम प्रभुके दास, सखा या सेवक

बनकर जो उस परमधाममें सदा समीप निवास करते हैं, वे सर्वदा उसकी आज्ञामें ही चलते हैं। गीताके अध्याय ८। २४ का श्लोक इस परमधाममें जानेवाले साधकके लिये ही है। वृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद्में भी इस अर्चिमार्गका विस्तृत वर्णन है। इस नित्यधामको ही सम्भवतः भगवान् श्रीकृष्णके उपासक गोलोक, भगवान् श्रीरामके उपासक साकेतलोक कहते हैं। वेदमें इसीको सत्यलोक और ब्रह्मलोक कहा है। (वह ब्रह्मलोक नहीं, जिसमें ब्रह्माजी निवास करते हैं, जिसका वर्णन गीता अ० ८ के १६ वें श्लोकके पूर्वार्धमें है।) भगवान् साकाररूपसे अपने इसी नित्यधाममें विराजते हैं, साकाररूप मानकर नित्य परमधाम न मानना बड़ी भूलकी बात है।

भक्तोंके लिये भगवान् साकार कैसे बनते हैं ?

परमात्मा सत्-चित्-आनन्दघन नित्य अपाररूपसे सभी जगह परिपूर्ण हैं। उदाहरणके लिये अग्निका

नाम लिया जा सकता है। अग्नि निराकाररूपसे सभी स्थानोंमें व्याप्त है, प्रकट करनेकी सामग्री एकत्र करके साधन करनेसे ही वह प्रकट हो जाती है। प्रकट होनेपर उसका व्यक्त रूप उतना ही लम्बा-चौड़ा दीख पड़ता है, जितना लकड़ी आदि पदार्थका होता है। इसी प्रकार गुप्तरूपसे सर्वत्र व्यापक अदृश्य सूक्ष्म निराकार परमात्मा भी भक्तके इच्छानुसार साकाररूपमें प्रकट होते हैं। वास्तवमें अग्निकी व्यापकताका उदाहरण भी एकदेशीय है; क्योंकि जहाँ केवल आकाश या वायु-तत्त्व है वहाँ अग्नि नहीं है, परंतु परमात्मा तो सब जगह परिपूर्ण है, परमात्माकी व्यापकता सबसे श्रेष्ठ और विलक्षण है। ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ परमात्मा न हो और संसारमें ऐसी भी कोई जगह नहीं कि जहाँ परमात्माकी माया न हो। जहाँ देशकाल हैं वहीं माया है। मायारूप सामग्रीको लेकर परमात्मा चाहे जहाँ प्रकट हो सकते हैं। जहाँ जल है और शीतलता है वहीं बर्फ जम सकती है। जहाँ मिट्टी और कुम्हार है वहीं घड़ा बन सकता है। जल और मिट्टी तो शायद सब जगह न भी

मिले; परंतु परमात्मा और उनकी माया तो संसारमें सभी जगह मिलते हैं। ऐसी स्थितिमें उनके प्रकट होनेमें कठिनता ही क्या है ? भक्तका प्रेम चाहिये।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

निराकारकी व्यापकताका विचार तो सभी कर सकते हैं, परंतु साकाररूपसे तो भगवान् केवल भक्तको दीखते हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं। चाहे जैसे कर सकते हैं। एकको, अनेकको या सबको एक साथ दर्शन दे सकते हैं। उनकी इच्छा है। अवश्य ही वह इच्छा लड़कोंके खेलकी तरह दोषयुक्त नहीं होती है। उनकी इच्छा विशुद्ध होती है। भक्तकी इच्छा भी भगवान्‌के भावानुसार ही होती है। भगवान्‌ने कहा है कि मैं भक्तके हृदयमें रहता हूँ। बात ठीक है। जैसे हम सबके शरीरमें निराकाररूपसे अग्नि स्थित है, उसी प्रकार भगवान् भी निराकार सत्-चित्-आनन्दघनरूपसे सभीके हृदयमें स्थित हैं, परंतु भक्तोंका हृदय शुद्ध होनेसे उसमें वे प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं, यही

भक्तहृदयकी विशेषता है। सूर्यका प्रतिबिम्ब काठ, पत्थर और दर्पणपर समान ही पड़ता है, परंतु स्वच्छ दर्पणमें तो वह दीखता है, काठ, पत्थरमें नहीं दीखता। इसी प्रकार भगवान् सबके हृदयमें रहनेपर भी अभक्तोंके काष्ठसदृश अशुद्ध हृदयमें दिखलायी नहीं देते और भक्तोंके स्वच्छ दर्पण-सदृश शुद्ध हृदयमें प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं। भक्त ध्यानमें उन्हें जैसा समझता है वैसे ही वे उसके हृदयमें बसते हैं।

महात्मालोग कहा करते हैं कि जहाँ कीर्तन होता है, वहाँ भगवान् स्वयं साकाररूपसे उपस्थित रहते हैं। कीर्तन करते हुए भक्तको साकाररूपमें दीखते भी हैं। यह नहीं समझना चाहिये कि यह केवल भक्तकी भावना ही है। वास्तवमें उसे सत्यरूपसे ही दीखते हैं। केवल प्रतीत होनेवाला तो मायाका कार्य है। भगवान् तो मायाशक्तिके प्रभु हैं। महापुरुषोंकी यह मान्यता सत्य है कि—

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

(आदि० १९। ३५)

यह हो सकता है कि भगवान् साकाररूपसे कीर्तनमें रहकर भी किसीको न दीखें, परंतु वे कीर्तनमें स्वयं रहते हैं, इस बातपर विश्वास करना ही श्रेयस्कर है।

जब भगवान् चाहे जहाँ जिस रूपमें भक्तके इच्छानुसार प्रकट हो सकते हैं, तब भक्त अपने भगवान्का किसी भी रूपमें ध्यान करे, फल एक ही होता है। मोरमुकुटधारी श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करे या धनुष-बाणधारी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका करे। शंख, चक्र, गदा, पद्मधारी भगवान् श्रीविष्णुका ध्यान करे या विश्वरूप विराट् परमात्माका, बात एक ही है, जिस रूपका ध्यान करे उसीको पूर्ण मानकर करना चाहिये। इसी प्रकार जप भी अपनी रुचिके अनुसार ॐ, राम, कृष्ण, हरि, नारायण, शिव आदि किसी भी भगवन्नामका करे, सबका फल एक ही है। सगुणके ध्यानकी कुछ विधि '**श्रीप्रेमभक्तिप्रकाश**' और '**सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय**'* नामक पुस्तकमें हैं, वहाँ देख लेनी चाहिये।

---

* ये दोनों पुस्तकें गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित हैं।

अब यहाँ भगवान्‌के विश्वरूपके सम्बन्धमें कुछ कहना है। भगवान्‌ने अर्जुनको जो रूप दिखलाया था, वह भी विश्वरूप था और वेदवर्णित भूर्भुवः स्वःरूप यह ब्रह्माण्ड भी भगवान्‌का विश्वरूप है। दोनों एक ही बात है, सारा विश्व ही भगवान्‌का स्वरूप है। स्थावर, जंगम सबमें साक्षात् परमात्मा विराजमान हैं। समस्त विश्वको परमात्माका स्वरूप मानकर उसका सत्कार और सेवा करना ही विश्वरूप परमात्माका सत्कार और सेवा करना है। विश्वमें जो दोष या विकार हैं वह सब परमात्माके स्वरूपमें नहीं हैं। ये सब बाजीगरकी लीलाके समान क्रीड़ामात्र हैं। नाम-रूप सब खेल हैं। भगवान् तो सदा अपने ही स्वरूपमें स्थित हैं। निराकाररूपसे तो परमात्मा बर्फमें जलकी भाँति सर्वत्र परिपूर्ण हैं, बर्फमें जलसे भिन्न अन्य कोई वस्तु नहीं है, जलकी जगह बर्फका पिण्ड दीखता है। वास्तवमें कुछ है नहीं, इसी प्रकार उस शुद्ध ब्रह्ममें यह संसार दीखता है, वस्तुतः है नहीं।

सगुणरूपसे अग्निकी तरह अव्यक्त होकर व्यापक

है, सो चाहे जब साकाररूपमें प्रकट हो सकता है, यही बात ऊपर कही गयी है, इसी व्यापक परमात्माको विष्णु कहते हैं, विष्णु शब्दका अर्थ ही व्यापक होता है।

भगवान् गुणातीत हैं, बुरे-भले सभी गुणोंसे युक्त हैं और केवल सद्गुणसम्पन्न हैं

भगवान्में कोई भी गुण नहीं। वे गुणातीत हैं, बुरे-भले सभी गुण उनमें हैं और उनमें केवल सद्गुण हैं, दुर्गुण हैं ही नहीं। ये तीनों ही बातें भगवान्के लिये कही जा सकती हैं, इस विषयको कुछ समझना चाहिये।

शुद्ध ब्रह्म निराकार चेतन विज्ञानानन्दघन सर्वव्यापी परमात्माका वास्तविक रूप सम्पूर्ण गुणोंसे सर्वथा अतीत है। जगत्के सारे गुण-अवगुण सत्त्व, रज और तमसे बनते हैं। सत्त्व, रज, तम—तीनों गुण मायाके अन्तर्गत हैं, इसीसे उसका नाम त्रिगुणमयी माया है। इनमें सत्त्व उत्तम है, रज मध्यम है और तम अधम है। परमात्मा इस मायासे अत्यन्त विलक्षण, सर्वथा अतीत और गुणरहित है, इसीसे उसका नाम शुद्ध है। अतएव वह गुणातीत है।

माया वास्तवमें है तो नहीं, यदि कहीं मानी जाय तो

वह भी कल्पनामात्र है। यह मायाकी कल्पना परमात्माके एक अंशमें है। गुण-अवगुण सब मायामें हैं। इस न्यायसे सत्य, दया, त्याग, विचार और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि गुण और अवगुणोंसे युक्त यह सम्पूर्ण संसार उस परमात्मामें ही अध्यारोपित है। इसीसे सभी सद्गुण और दुर्गुण उसीमें आरोपित माने जा सकते हैं। इस स्थितिमें वह बुरे-भले सभी गुणोंसे युक्त कहा जा सकता है।

यह ब्रह्माण्ड जिसके अन्तर्गत है वह मायाविशिष्ट ब्रह्म सृष्टिकर्ता ईश्वर शुद्ध ब्रह्मसे भिन्न नहीं है, वह मायाको अपने अधीन करके प्रादुर्भूत होता है, समय-समयपर अवतार धारण करता है, इसीसे उसे माया-विशिष्ट कहते हैं। गीतामें कहा है—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥

(४। ६)

जैसे अवतार होते हैं, वैसे सृष्टिके आदिमें भी मायाको अपने अधीन करके ही भगवान् प्रकट होते हैं। इन्हींका नाम विष्णु है। ये आदिपुरुष विष्णु

सर्वसत्त्वगुणसम्पन्न हैं। सत्त्वगुणकी मूर्ति हैं। सात्त्विक तेज, प्रभाव, सामर्थ्य, विभूति आदिसे विभूषित हैं। दैवी सम्पदाके गुण ही सत्त्वगुण हैं। शुद्ध सत्त्व ही उनका स्वरूप है। दुर्गुण तो रज और तममें रहते हैं। प्रेम सादृश्यता और समानतामें होता है। इसीसे जिस भक्तमें दैवी सम्पत्तिके गुण होते हैं, वही भगवान्‌के दर्शनका उपयुक्त पात्र समझा जाता है, माया-विशिष्ट सगुण भगवान् मायाको साथ लेकर समय-समयपर अवतार धारण किया करते हैं। वे सर्वगुणसम्पन्न हैं। शुद्ध, स्वतन्त्र, प्रभु और सर्वशक्तिमान् हैं। ऐसी कोई भी बात नहीं जो वे नहीं कर सकें। इसीलिये यद्यपि उन शुद्ध सत्त्वगुणरूप सगुण साकार परमात्मामें रज और तम वास्तवमें नहीं रहते तथापि वह रज-तमका कार्य कर सकते हैं। भगवान् विष्णु दुष्टदलनरूप हिंसात्मक कार्य करते हुए दीख पड़ते हैं। मानवदृष्टिसे उनमें हिंसा या तमकी प्रतीति होती है। परंतु वस्तुतः उनमें यह बात नहीं है। न्यायकारी होनेके कारण वे यथावश्यक कार्य करते हैं। राजा जनक मुक्त पुरुष थे,

परम सात्त्विक थे, परंतु राजा होनेके कारण न्याय करना उनका काम था। चोरोंको वे दण्ड भी दिया करते थे। इसमें कोई दोषकी बात भी नहीं। माता अपने प्यारे बच्चेको शिक्षा देनेके लिये धमकाती और किसी समय आवश्यक समझकर हितभरे हृदयसे एक-आध थप्पड़ भी जमा देती है, परंतु ऐसा करनेमें उसकी दया ही भरी रहती है। इसी प्रकार दयानिधि न्यायकारी भगवान्‌का दण्डविधान भी दयासे युक्त ही होता है। धर्मानुकूल काम भी भगवान् है। भगवान्‌ने कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

(गीता ७। ११)

धर्मयुक्त काम मैं हूँ, परंतु पापयुक्त नहीं। भगवान् सत् हैं, सात्त्विक हैं, शुद्ध सत्त्व हैं। वे मायाकी शुद्ध-सत्त्वविद्यासे सम्पन्न हैं। जीव अविद्यासम्पन्न है। विद्यामें ज्ञान है, प्रकाश है, वहाँ अवगुण या अन्धकार ठहर ही कैसे सकता है? अवगुण तो अविद्यामें रहते हैं। इस न्यायसे भगवान् केवल सद्‌गुणसम्पन्न हैं।

ऊपरके विवेचनसे यह सिद्ध हो गया कि

परमात्मा गुणातीत, गुणागुणयुक्त और केवल सत्त्वगुणसम्पन्न कहे जा सकते हैं।

भगवान्‌का स्वरूप और निराकार-साकारकी एकता

शरीरके तीन भेद हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण! जो दीख पड़ता है सो स्थूल है, जो मरनेपर साथ जाता है वह सूक्ष्म है और जो मायामें लय हो जाता है वह कारण है। शरीरके ये तीनों भेद नित्य भी देखे जाते हैं। जाग्रत्‌में स्थूल शरीर काम करता है। स्वप्नमें सूक्ष्म और सुषुप्तिमें कारण रहता है। इसी प्रकार परमात्माके भी तीन स्वरूप कहे जा सकते हैं। महाप्रलयमें रहनेवाला परमात्माका कारण स्वरूप है, सारा विश्व उसीमें लय होकर रहता है, उस समय केवल परमेश्वर और उनकी प्रकृति रहते हैं। सारे जीव प्रकृतिके अंदर लय हो जाते हैं। जीवमें प्रकृति-पुरुष दोनोंका अंश है। चेतनता परमात्माका अंश है और अज्ञान प्रकृतिका। मायाकी उपाधिके कारण महाप्रलयमें भी जीव मुक्त नहीं होते। उसके बाद सृष्टिके आदिमें फिर सोकर

जाग उठनेके समान अपने-अपने कर्मफलानुरूप नाना रूपोंमें जाग उठते हैं। इस प्रकार महाप्रलयमें परमात्माका रूप कारण कहा जा सकता है।

परमात्माका सूक्ष्मरूप सब जगह रहता है, इसीका नाम आदि पुरुष है, सृष्टिका आदि कारण यही है, इसीका नाम पुरुषोत्तम सृष्टिकर्ता ईश्वर है।

परमात्मा स्थूलरूपसे शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी भगवान् विष्णु हैं, जो सदा नित्यधाममें विराजते हैं।

भक्तकी भावनाके अनुसार ही भगवान् बन जाते हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड परमात्माका शरीर है, इसीके अंदर अपना शरीर है, इस न्यायसे हम सब भी परमात्माके पेटमें हैं।

एक तत्त्वकी बात और समझनी चाहिये। जब आकाश निर्मल होता है, सूर्य उगे हुए होते हैं उस समय सूर्यके और अपने बीचमें आकाशमें कोई चीज नहीं दीखती; परंतु वहाँ जल रहता है। यह मानना पड़ेगा कि सूर्य और अपने बीचमें जल भरा हुआ है; परंतु वह दीखता नहीं, क्योंकि वह सूक्ष्म और परमाणुरूपमें

रहता है, जब उसमें घनता आती है तब क्रमशः उसका रूप स्थूल होकर व्यक्त होने लगता है। सूर्यदेवके तापसे भाप बनती है। जब भाप घन होती है तब उसके बादल बन जाते हैं, फिर उनमें जलका संचार होता है। पानीके बादल पहाड़परसे चले जाते हों, उस समय कोई वहाँ चला जाय तो वर्षा न होनेपर भी उसके कपड़े भींग जाते हैं। बादलमें जलकी घनता होनेपर बूँदें बन जाती हैं और घनता होती है तो वही ओले बनकर बरसने लगता है फिर वह ओले या बर्फ गर्मी पहुँचते ही गलकर पानी हो जाते हैं और अधिक गर्मी होनेपर उसीकी फिर भाप बन जाती है। भाप आकाशमें उड़कर अदृश्य हो जाती है और अन्तमें जल फिर उसी परमाणु अव्यक्तरूपमें परिणत हो जाता है। इस परमाणुरूपमें स्थित जलको—अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुको सहस्रगुण स्थूल दिखलानेवाले यन्त्रसे भी कोई नहीं देख सकता। पर जल रहता अवश्य है, न रहता तो आता कहाँसे ?

इस दृष्टान्तके अनुसार परमात्माका स्वरूप समझना चाहिये। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥

(८।३-४)

अर्जुनके सात प्रश्नोंमें छः प्रश्न ये थे कि ब्रह्म क्या है, अध्यात्म क्या है, कर्म क्या है, अधिभूत क्या है, अधिदैव क्या है और अधियज्ञ क्या है? भगवान्‌ने उपर्युक्त श्लोकोंमें इनका यह उत्तर दिया कि अक्षर ब्रह्म है, स्वभाव अध्यात्म है, शास्त्रोक्त त्याग कर्म है, नाश होनेवाले पदार्थ अधिभूत हैं, समष्टिप्राणरूपसे हिरण्यगर्भ द्वितीय पुरुष अधिदैव है और निराकार व्यापक विष्णु अधियज्ञ मैं हूँ।

उपर्युक्त दृष्टान्तसे इसका दार्ष्टान्त इस प्रकार समझा जा सकता है—

(१) परमाणुरूप जलके स्थानमें—

शुद्ध सच्चिदानन्दघन गुणातीत परमात्मा, जिसमें यह संसार न तो कभी हुआ और न है, जो केवल अतीत परम अक्षर है।

(२) भापरूप जल—

वही शुद्ध ब्रह्म अधियज्ञ निराकाररूपसे व्याप्त रहनेवाला मायाविशिष्ट ईश्वर।

(३) बादल—

अधिदैव, सबका प्राणाधार हिरण्यगर्भ ब्रह्मा। सत्रह तत्त्वोंके समूहको सूक्ष्म कहते हैं, इनमें प्राण प्रधान है। सबके प्राण मिलकर समष्टिप्राण हो जाते हैं, यह समष्टिप्राण प्रलयमें भी रहता है; महाप्रलयमें नहीं। यह सत्रह तत्त्वोंका समूह हिरण्यगर्भ ब्रह्माका सूक्ष्म शरीर है।

(४) जलकी लाखों-करोड़ों बूँदें—

जगत्के सब जीव।

(५) वर्षा—

जीवोंकी क्रिया।

(६) जलके ओले या बर्फ—

पंचभूतोंकी अत्यन्त स्थूल सृष्टि।

इस सृष्टिका स्वरूप इतना स्थूल और विनाशशील है कि जरा-सा ताप लगते ही क्षणभरमें ओलोंके

गलकर पानी हो जानेके सदृश तुरंत गल जाता है। यहाँ ताप ज्ञानाग्निरूप वह प्रकाश है जिसके पैदा होते ही स्थूल सृष्टिरूपी ओले तुरंत गल जाते हैं।

अज्ञान ही सरदी है। जितना अज्ञान होता है उतनी स्थूलता होती है और जितना ज्ञान होता है, उतनी ही सूक्ष्मता होती है। जो पदार्थ जितना भारी होता है, वह उतना ही नीचे गिरता, जितना हलका होता है उतना ही ऊपरको उठता है। अज्ञान ही बोझा है, जलके अत्यन्त स्थूल होनेपर जब वह बर्फ बन जाता है तभी उसे नीचे गिरना पड़ता है, इसी प्रकार अज्ञानके बोझसे स्थूल हो जानेपर जीवको गिरना पड़ता है।

ज्ञानरूपी तापके प्राप्त होते ही संसारका बोझ उतर जाता है और जैसे तापसे गलकर जल बननेपर और भी ताप प्राप्त होनेसे वह जल धुआँ या भाप होकर ऊपर उड़ जाता है वैसे ही जीव भी ऊपर उठ जाता है।

जीवात्मा खास ईश्वरका स्वरूप है, परंतु जडता या अज्ञानसे जब यह स्थूल हो जाता है तभी इसका पतन होता है। अज्ञान ही अधःपतनका कारण है और ज्ञान ही

उत्थानका कारण है। जीवात्मा एक बार शेष सीमातक उठनेपर फिर नहीं गिरता। उसके ज्ञानमें सब कुछ परमेश्वर ही हो जाता है। वास्तवमें तत्त्वसे है तो एक ही। परमाणु, भाप, बादल, बूँद, ओले सब जल ही तो हैं।

इस न्यायसे सभी वस्तुएँ एक ही परमात्मतत्त्व हैं, इसलिये भगवान् चाहे जैसे, चाहे जब, चाहे जहाँ, चाहे जिस रूपमें प्रकट हो जाते हैं। इस बातका ज्ञान होनेपर साधकको सब जगह ईश्वर ही दीखते हैं, जलका तत्त्व समझ लेनेपर सब जगह जल ही दीखता है, वही परमाणुमें और वही ओलोंमें। अत्यन्त सूक्ष्ममें भी वही और अत्यन्त स्थूलमें भी वही। इसी प्रकार सूक्ष्म और स्थूलमें वही एक परमात्मा है। '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**।' यही निराकार-साकारकी एकरूपता है।

अज्ञानसे अहंकार बढ़ता है, जितना अहंकार अधिक होता है उतना ही वह सांसारिक वस्तुओंको अधिक ग्रहण करता है। जितना सांसारिक बोझ अधिक होगा उतना ही वह नीचे जायगा। तीनों गुण हैं, इनमें तमोगुण सबसे भारी है, इसीसे तमोगुणी पुरुष नीचे जाता है,

रजोगुण समान है, इससे रजोगुणी बीचमें मनुष्यादिमें रह जाता है, सत्त्वगुण हलका है, इससे सत्त्वगुणी परमात्माकी ओर ऊपरको उठता है—

'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्थाः'
'मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः'
'अधो गच्छन्ति तामसाः'

हल्की चीज ऊपरको तैरती है, भारी डूब जाती है। आसुरी सम्पदा तमोगुणका स्वरूप है, इसलिये वह नीचे ले जाती है। सत्त्वगुण हलका होनेसे ऊपरको उठाता है। दैवी सम्पदा ही सत्त्वगुण है, यही ईश्वरकी सम्पत्ति है, यह सम्पत्ति ज्यों-ज्यों बढ़ती है, त्यों-ही-त्यों साधक ऊपर उठता है, यानी परमात्माके समीप पहुँचता है।

इस तरहसे स्थूल और सूक्ष्ममें उस एक ही परमात्माको व्यापक समझना चाहिये।

परमात्मा व्यापकरूपसे सबको देखते और जानते हैं।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

वह ज्ञेय कैसा है। सब ओरसे हाथ-पैरवाला, सब ओरसे नेत्र, सिर तथा मुखवाला एवं सब ओरसे कानवाला है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वह न हो, ऐसा कोई शब्द नहीं, जिसे वह न सुनता हो, ऐसा कोई दृश्य नहीं, जिसे वह न देखता हो ऐसी कोई वस्तु नहीं, जिसे वह न ग्रहण करता हो और ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ वह न पहुँचता हो।

हम यहाँ प्रसाद लगाते हैं तो वह तुरंत खाता है। हम यहाँ स्तुति करते हैं तो वह सुनता है। हमारी प्रत्येक क्रियाको वह देखता है, परंतु हम उसे नहीं देख सकते। इसपर यह प्रश्न होता है कि एक ही पुरुषकी सब जगह सब इन्द्रियाँ कैसे रहती हैं? आँख है, वहाँ नाक कैसे हो सकती है? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि यह बात तो ठीक है, परंतु परमात्मा इससे विलक्षण है, वह अलौकिक शक्ति है। उसमें सब कुछ सम्भव है। मान लीजिये, एक सोनेका ढेला है, उसमें कड़े, बाजूबंद, कण्ठी आदि सभी गहने सभी जगह हैं।

जहाँ इच्छा हो वहींसे सब चीजें मिल सकती हैं, इसी प्रकार यह एक ऐसी वस्तु है जिसमें सब जगह सभी वस्तुएँ व्यापक हैं। सभी उसमेंसे निकल सकती हैं, वह सब जगहकी और सबकी बातोंको एक साथ सुन सकता है और सबको एक साथ देख सकता है।

स्वप्नमें आँख, कान, नाक, वगैरह न होनेपर भी अन्तःकरण स्वयं सब क्रियाओंको आप ही करता और आप ही देखता-सुनता है। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य सभी कुछ बन जाता है, इसी प्रकार ईश्वरीय शक्ति भी बड़ी विलक्षण है, वह सब जगह सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ है। यही तो उसका ईश्वरत्व और विराट् स्वरूप है।

साकाररूप उस परमेश्वरका समस्त ब्रह्माण्ड शरीर है, जैसे बर्फ जलका शरीर है, परंतु उससे अलग नहीं है। इसी प्रकार क्या संसार भी वस्तुतः ऐसा ही है? क्या शरीर भी परमात्मा है?

इसके उत्तरमें यही कहना पड़ता है कि है भी

और नहीं भी। इस शरीरकी कोई सेवा करता या आराम पहुँचाता है, तब मैं, उसे अपनी सेवा और 'अपनेको आराम पहुँचता है' ऐसा मानता हूँ, परंतु वस्तुतः मैं शरीर नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ, पर जबतक मैं इस साढ़े तीन हाथकी देहको 'मैं' मानता हूँ, तबतक वह मैं हूँ। इस स्थितिमें चराचर ब्रह्माण्ड ईश्वर है, सबको उसीकी सेवा करनी चाहिये, उसकी सेवा ही ईश्वरकी सेवा है, संसारको सुख पहुँचाना ही परमात्माको सुख पहुँचाना है और जब मैं यह शरीर नहीं हूँ तब यह ब्रह्माण्डरूपी शरीर भी ईश्वर नहीं है। यह अपना शरीर है तभीतक वह उसका शरीर है। हम सब उसके अंश हैं, तो वह अंशी है, वास्तवमें अन्तमें हम आत्मा ही ठहरते हैं, शरीर नहीं। परंतु जबतक ऐसा नहीं है तबतक इसी चालसे चलना चाहिये। यथार्थ ज्ञान होनेपर तो एक शुद्ध ब्रह्म ही रह जायगा।

इस न्यायसे निराकार-साकार सब एक ही वस्तु है। जगत् परमेश्वरमें अध्यारोपित है, महात्मालोग ऐसा ही कहते हैं, जैसे रज्जुमें सर्पकी प्रतीतिमात्र है,

वास्तवमें है नहीं। स्वप्नका संसार अपनेमें प्रतीत होता है, मृगतृष्णाका जल या आकाशमें तिरमिरे प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार परमात्मामें संसारकी प्रतीति होती है, इस बातको महात्मा पुरुष ही जानते हैं। जागनेपर जागनेवालेको ही स्वप्नके संसारकी असारताका यथार्थ ज्ञान होता है। जबतक यह बात जाननेमें नहीं आती तबतक उपाय करना चाहिये। उपाय यह है—

निराकार और साकार किसी भी रूपका ध्यान करनेपर जो एक ही परम वस्तु उपलब्ध होती है उस परमेश्वरकी सब प्रकारसे शरण होकर इन्द्रिय और शरीरसे उसकी सेवा करना, मनसे उसे स्मरण करना, श्वाससे उसका नामोच्चारण करना, कानोंसे उसका प्रभाव सुनना और शरीरसे उसके इच्छानुसार चलना यही उसकी सेवा है, यही असली भक्ति है और इसीसे आत्माका शीघ्र कल्याण हो सकता है।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

॥ श्रीहरिः ॥

नित्यपाठ साधन-भजन एव कर्मकाण्ड-हेतु

कोड	पुस्तक
592	**नित्यकर्म-पूजाप्रकाश** [गुजराती, तेलुगु भी]
1593	**अन्त्यकर्म-श्राद्धप्रकाश**
1895	**जीवच्छाद्ध-पद्धति**
1809	**गया श्राद्ध-पद्धति**
1928	**त्रिपिण्डी श्राद्ध-पद्धति**
1416	**गरुडपुराण-सारोद्धार** (सानुवाद)
1627	**रुद्राष्टाध्यायी**-सानुवाद
1417	**शिवस्तोत्ररत्नाकर**
1774	**देवीस्तोत्ररत्नाकर**
1623	**ललितासहस्रनामस्तोत्रम्** - [तेलुगु भी]
610	**व्रत-परिचय**
1162	**एकादशी-व्रतका माहात्म्य**— मोटा टाइप [गुजराती भी]
1136	**वैशाख-कार्तिक-माघमास-माहात्म्य**
1588	**माघमासका माहात्म्य**
1899	**श्रावणमासका माहात्म्य**
1367	**श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा**
052	**स्तोत्ररत्नावली**—सानुवाद [तेलुगु, बँगला भी]
1629	,, ,, सजिल्द
1567	**दुर्गासप्तशती**— मूल, मोटा (बेड़िया)
876	,, मूल गुटका
1727	,, मूल, लघु आकार
1346	,, सानुवाद मोटा टाइप
118	,, सानुवाद [गुजराती, बँगला, ओड़िआ भी]
489	,, सानुवाद, सजिल्द [गुजराती भी]

कोड	पुस्तक
1281	**दुर्गासप्तशती** (विशिष्ट सं०)
866	,, केवल हिन्दी
1161	,, केवल हिन्दी मोटा टाइप, सजिल्द
819	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**-शांकरभाष्य
206	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—सटीक
226	**श्रीविष्णुसहस्रनाम**—मूल, [मलयालम, तेलुगु, कन्नड, तमिल, गुजराती भी]
1872	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** -लघु
509	**सूक्ति-सुधाकर**
1801	**श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्** (हिन्दी-अनुवादसहित)
207	**रामस्तवराज**—(सटीक)
211	**आदित्यहृदयस्तोत्रम्**— हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित [ओड़िआ भी]
224	**श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र** [तेलुगु, ओड़िआ भी]
231	**रामरक्षास्तोत्रम्**— [तेलुगु, ओड़िआ, अंग्रेजी भी]
1594	**सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह**
1850	**शतनामस्तोत्रसंग्रह**
715	**महामन्त्रराजस्तोत्रम्**

नामावलिसहितम्

कोड	पुस्तक
1599	**श्रीशिवसहस्रनामस्तोत्रम्** (गुजराती भी)
1600	**श्रीगणेशसहस्रनामस्तोत्रम्**
1601	**श्रीहनुमत्सहस्रनामस्तोत्रम्**
1663	**श्रीगायत्रीसहस्रनामस्तोत्रम्**
1664	**श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्रम्**
1665	**श्रीसूर्यसहस्रनामस्तोत्रम्**

कोड	पुस्तक
1706	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्
1704	श्रीसीतासहस्रनामस्तोत्रम्
1705	श्रीरामसहस्रनामस्तोत्रम्
1707	श्रीलक्ष्मीसहस्रनामस्तोत्रम्
1708	श्रीराधिकासहस्रनामस्तोत्रम्
1709	श्रीगंगासहस्रनामस्तोत्रम्
1862	श्रीगोपाल स०-सटीक
1748	संतान-गोपालस्तोत्र
563	शिवमहिम्नःस्तोत्र [तेलुगु भी]
230	अमोघ शिवकवच
495	दत्तात्रेय-वज्रकवच सानुवाद [तेलुगु, मराठी भी]
229	श्रीनारायणकवच [ओड़िआ, तेलुगु भी]
1885	वैदिक-सूक्त-संग्रह
054	भजन-संग्रह
1849	भजन-सुधा
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली
144	भजनामृत
142	चेतावनी-पद-संग्रह
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह
1800	पंचदेव-अथर्वशीर्ष-संग्रह
1214	मानस-स्तुति-संग्रह
1092	भागवत-स्तुति-संग्रह
1344	सचित्र-आरती-संग्रह
1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
153	आरती-संग्रह
1845	प्रमुख आरतियाँ-पॉकेट
208	सीतारामभजन
221	हरेरामभजन— दो माला (गुटका)
222	हरेरामभजन—१४ माला
225	गजेन्द्रमोक्ष-सानुवाद, [तेलुगु, कन्नड़, ओड़िआ भी]

कोड	पुस्तक
385	नारद-भक्ति-सूत्र एवं शाण्डिल्य भक्ति-सूत्र, सानुवाद [बँगला, तमिल भी]
1505	भीष्मस्तवराज
699	गङ्गालहरी
1094	हनुमानचालीसा— हिन्दी भावार्थसहित
1917	,, मूल (रंगीन) वि०सं०
227	,, (पॉकेट साइज) [गुजराती, असमिया, तमिल, बँगला, तेलुगु, कन्नड, ओड़िआ भी]
695	हनुमानचालीसा—(लघु आकार) [गुजराती, अंग्रेजी, ओड़िआ, बँगला भी]
1525	हनुमानचालीसा—अति लघु आकार [गुजराती भी]
228	शिवचालीसा—असमिया भी
1185	शिवचालीसा-लघु आकार
851	दुर्गाचालीसा, विन्ध्येश्वरीचालीसा
1033	,, लघु आकार
232	श्रीरामगीता
383	भगवान् कृष्णकी कृपा तथा दिव्य प्रेमकी....
203	अपरोक्षानुभूति
139	नित्यकर्म-प्रयोग
524	ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री
236	साधक-दैनन्दिनी
1471	संध्या, संध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य
210	सन्ध्योपासनविधि एवं तर्पण-बलिवैश्वदेवविधि— मन्त्रानुवादसहित [तेलुगु भी]
614	सन्ध्या